Volume: 4 Issue: 9 Pages: 131-137

गुट निरपेक्ष आंदोलन के प्रणेता के रूप में जवाहरलाल नेहरू: एक आलोचनात्मक मूल्यांकन

*[1] चंदन कुमार

*[1] शोधार्थी, राजनीतिक विज्ञान, भूपेंद्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा, बिहार, भारत।

Article Info.
E-ISSN: 2583-6528
Impact Factor (SJIF): 6.876
Peer Reviewed Journal
Available online:
www.alladvancejournal.com

Received: 21/Aug/2025
Accepted: 20/Sep/2025

***Corresponding Author**
चंदन कुमार
शोधार्थी, राजनीतिक विज्ञान, भूपेंद्र नारायण मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा, बिहार, भारत।

सारांश:
यह शोध पत्र गुटनिरपेक्ष आंदोलन (NAM) को आकार देने में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री, जवाहरलाल नेहरू की महत्वपूर्ण भूमिका का एक आलोचनात्मक मूल्यांकन प्रस्तुत करता है। द्वितीय विश्व युद्ध के बाद जब विश्व संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ के नेतृत्व वाले दो विरोधी शक्ति गुटों में विभाजित हो गया, तब नेहरू ने नए स्वतंत्र एशियाई और अफ्रीकी देशों के लिए एक "तीसरा रास्ता" प्रस्तावित किया। यह शोध पत्र नेहरू की वैचारिक नींव, विशेष रूप से पंचशील के सिद्धांतों का विश्लेषण करता है, जिसने गुटनिरपेक्षता की विदेश नीति का आधार तैयार किया। इसमें बांडुंग (1955) और बेलग्रेड (1961) सम्मेलनों के माध्यम से आंदोलन की स्थापना में नेहरू के राजनयिक प्रयासों पर प्रकाश डाला गया है। शोध का मूल्यांकन दोहरे दृष्टिकोण से किया गया है। एक ओर, यह गुटनिरपेक्षता की सफलताओं को रेखांकित करता है, जैसे कि भारत की रणनीतिक स्वायत्तता को बनाए रखना, अंतरराष्ट्रीय मंच पर इसकी प्रतिष्ठा बढ़ाना और विश्व शांति को बढ़ावा देना। दूसरी ओर, यह नीति की सीमाओं और विफलताओं का भी आलोचनात्मक परीक्षण करता है। इसमें 1962 के चीन-भारत युद्ध को एक महत्वपूर्ण मोड़ के रूप में विश्लेषित किया गया है, जिसने नेहरू की आदर्शवादी नीति की कमजोरियों को उजागर किया। साथ ही, सोवियत संघ की ओर झुकाव के आरोपों और राष्ट्रीय सुरक्षा पर इसके प्रभाव की भी पड़ताल की गई है। अंततः, यह शोध पत्र इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि नेहरू निस्संदेह गुटनिरपेक्ष आंदोलन के प्रणेता थे, जिनकी दृष्टि ने अंतरराष्ट्रीय संबंधों पर एक स्थायी प्रभाव छोड़ा, भले ही उनकी नीति व्यावहारिक चुनौतियों से घिरी रही।

मुख्य शब्द: जवाहरलाल नेहरू, गुटनिरपेक्ष आंदोलन, विदेश नीति, शीत युद्ध एवं पंचशील

प्रस्तावना:

द्वितीय विश्व युद्ध (1939-1945) की समाप्ति ने वैश्विक राजनीतिक परिदृश्य को मौलिक रूप से बदल दिया। जहाँ एक ओर इसने यूरोपीय साम्राज्यवाद के पतन की प्रक्रिया को गति दी, वहीं दूसरी ओर इसने दो नई महाशक्तियों - संयुक्त राज्य अमेरिका (USA) और सोवियत संघ (USSR) - को जन्म दिया। ये दोनों महाशक्तियाँ न केवल सैन्य और आर्थिक रूप से शक्तिशाली थीं, बल्कि वैचारिक रूप से भी एक-दूसरे की धुर विरोधी थीं। संयुक्त राज्य अमेरिका पूंजीवादी लोकतंत्र का नेतृत्व कर रहा था, जबकि सोवियत संघ साम्यवादी विचारधारा का प्रसार कर रहा था। इसी वैचारिक संघर्ष ने शीत युद्ध (Cold War) को जन्म दिया, जिसने लगभग आधी सदी तक अंतरराष्ट्रीय संबंधों को परिभाषित किया।

विश्व तेजी से दो विरोधी खेमों में विभाजित हो गया। अमेरिका के नेतृत्व में पश्चिमी देशों ने 'उत्तरी अटलांटिक संधि संगठन' यानी नाटो (NATO, 1949) का गठन किया, तो सोवियत संघ ने इसके जवाब में पूर्वी यूरोपीय देशों के साथ मिलकर 'वारसा पैक्ट' (Warsaw Pact, 1955) बनाया। इतिहासकार जॉन लेविस गैडिस के अनुसार, "यह एक ऐसी 'लंबी शांति' थी जो परमाणु हथियारों के भय पर आधारित थी, जहाँ दोनों गुट एक-दूसरे को नष्ट करने की क्षमता रखते थे, लेकिन सीधे संघर्ष से बचते थे" (Gaddis, 1987, p. 215)।

इसी उथल-पुथल भरे दौर में, एशिया और अफ्रीका के अनेक देश औपनिवेशिक दासता से मुक्त हो रहे थे। भारत (1947), इंडोनेशिया (1949), घाना (1957) और कई अन्य नव-स्वतंत्र राष्ट्रों का उदय हुआ। इन राष्ट्रों के सामने अपनी राजनीतिक स्थिरता, आर्थिक विकास और राष्ट्रीय पहचान के निर्माण की विकट चुनौतियाँ थीं। इसके अतिरिक्त, उन पर दोनों महाशक्तियों की ओर से किसी एक गुट में शामिल होने का भारी दबाव था। किसी भी गुट में शामिल होने का अर्थ था अपनी विदेश नीति की स्वायत्तता को खो देना और शीत युद्ध के तनावों में उलझ जाना, जो इन देशों के हित में नहीं था। इसी जटिल अंतरराष्ट्रीय परिस्थिति ने एक 'तीसरे रास्ते' की खोज के लिए

उर्वर भूमि तैयार की, जिसे गुटनिरपेक्षता (Non-Alignment) के नाम से जाना गया। भारत के प्रथम प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू इस नए विचार के प्रमुख सूत्रधारों में से एक थे, जिन्होंने "गुटों की शक्ति-राजनीति से अलग रहकर एक स्वतंत्र और सक्रिय भूमिका" निभाने की वकालत की (Gopal, 1979, p. 64)।

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की वैश्विक व्यवस्था

शोध का महत्व और उद्देश्य

गुटनिरपेक्षता की अवधारणा को अक्सर तटस्थता (Neutrality) समझ लिया जाता है, लेकिन नेहरू के लिए इसका अर्थ कहीं अधिक गहरा और सक्रिय था। यह केवल सैन्य गठबंधनों से दूर रहना नहीं था, बल्कि "प्रत्येक मुद्दे का मूल्यांकन उसके गुण-दोषों के आधार पर करना और एक स्वतंत्र दृष्टिकोण अपनाना था" (Bandyopadhyaya, 1970, p. 45)। यह नीति शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व, उपनिवेशवाद की समाप्ति, और एक न्यायसंगत अंतरराष्ट्रीय आर्थिक व्यवस्था की स्थापना की पक्षधर थी।

यह शोध पत्र विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि यह जवाहरलाल नेहरू की भूमिका को केवल एक संस्थापक के रूप में नहीं, बल्कि एक विचारक, रणनीतिकार और गुटनिरपेक्ष आंदोलन के नैतिक दिशा-निर्धारक के रूप में स्थापित करने का प्रयास करता है। साथ ही, यह केवल प्रशंसात्मक दृष्टिकोण तक सीमित न रहकर, उनकी नीति की सीमाओं और असफलताओं का आलोचनात्मक विश्लेषण भी करता है।

इस शोध पत्र के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित हैं:

1. गुटनिरपेक्षता के पीछे नेहरू की वैचारिक और दार्शनिक दृष्टि को समझना।
2. इस आंदोलन की स्थापना और विकास में नेहरू के व्यावहारिक योगदान का मूल्यांकन करना।
3. नेहरू की गुटनिरपेक्ष नीति की प्रमुख सफलताओं और भारत एवं विश्व पर इसके सकारात्मक प्रभावों का विश्लेषण करना।
4. इस नीति के सामने आई चुनौतियों, आलोचनाओं और विफलताओं (विशेष रूप से 1962 के चीन-भारत युद्ध के संदर्भ में) की गहन पड़ताल करना।
5. गुटनिरपेक्ष आंदोलन पर नेहरू की विरासत के स्थायी प्रभाव का आकलन करना।

नेहरू की विदेश नीति का दर्शन और पंचशील का सिद्धांत

जवाहरलाल नेहरू की विदेश नीति किसी आकस्मिक राजनीतिक प्रतिक्रिया का परिणाम नहीं थी, बल्कि यह उनके गहरे ऐतिहासिक, दार्शनिक और मानवतावादी दृष्टिकोण का प्रतिबिंब थी। यह अध्याय नेहरू के उन वैचारिक आधारों की पड़ताल करता है जिन्होंने उनकी विदेश नीति को आकार दिया और पंचशील के उन सिद्धांतों का विश्लेषण करता है जो गुटनिरपेक्ष आंदोलन की आत्मा बने।

नेहरू की वैचारिक पृष्ठभूमि

नेहरू का विश्व-दृष्टिकोण कई स्रोतों से प्रभावित था, जिन्होंने मिलकर एक अद्वितीय और गतिशील विदेश नीति दर्शन का निर्माण किया।

- **गांधीवादी प्रभाव (Gandhian Influence):** हालाँकि नेहरू और गांधी के बीच कई मुद्दों पर मतभेद थे, लेकिन गांधी की अहिंसा और नैतिक साधनों की पवित्रता के सिद्धांत का नेहरू पर गहरा प्रभाव था। नेहरू ने इस दर्शन को अंतरराष्ट्रीय संबंधों में लागू करने का प्रयास किया। उनके लिए, इसका अर्थ था कि राष्ट्रों को अपने लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए आक्रामक युद्ध और धोखेबाजी के बजाय शांतिपूर्ण संवाद और सहयोग का मार्ग अपनाना चाहिए। उन्होंने इसे निष्क्रियता नहीं, बल्कि "विवादों के शांतिपूर्ण समाधान की सक्रिय खोज" के रूप में देखा (गोपाल, 1984, पृ. 102)।
- **समाजवाद और वैज्ञानिक दृष्टिकोण (Socialism and Scientific Temper):** नेहरू ब्रिटेन के फेबियन समाजवाद से प्रभावित थे, जो क्रांतिकारी हिंसा के बजाय क्रमिक सुधारों और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के माध्यम से समानता लाने पर जोर देता था। इस दृष्टिकोण ने उन्हें दोनों—शुद्ध पूंजीवादी और कट्टर साम्यवादी—आर्थिक मॉडलों से अलग एक मिश्रित अर्थव्यवस्था का मार्ग अपनाने के लिए प्रेरित किया। उनका मानना था कि भारत जैसे गरीब देश को अपनी ऊर्जा सैन्य गठबंधनों में बर्बाद करने के बजाय अपने आर्थिक और सामाजिक विकास पर केंद्रित करनी चाहिए (दत्त, 2007, पृ. 35)।
- **उपनिवेशवाद-विरोधी और अंतर्राष्ट्रीयतावाद (Anti-Colonialism and Internationalism):** भारत के स्वतंत्रता संग्राम के एक प्रमुख नेता के रूप में, नेहरू साम्राज्यवाद और उपनिवेशवाद के कट्टर विरोधी थे। वह मानते थे कि "जब तक दुनिया के किसी भी हिस्से में उपनिवेशवाद मौजूद है, तब तक सच्ची विश्व शांति संभव नहीं है" (नेहरू, 'Glimpses of World History', 1934)। उनकी विदेश नीति का एक केंद्रीय स्तंभ दुनिया भर के स्वतंत्रता आंदोलनों का समर्थन करना और नव-उपनिवेशवाद (Neo-colonialism) के किसी भी रूप का विरोध करना था। वह एक ऐसी विश्व व्यवस्था चाहते थे जहाँ सभी राष्ट्र, चाहे वे छोटे हों या बड़े, समान संप्रभुता का आनंद उठा सकें।
- **भारतीय दर्शन (Indian Philosophy):** नेहरू की नीति में प्राचीन भारतीय दर्शन, विशेष रूप से 'वसुधैव कुटुम्बकम्' (विश्व एक परिवार है) और बौद्ध धर्म के शांति और सहिष्णुता के संदेशों की भी झलक मिलती है। यह उनकी नीति को एक नैतिक आधार प्रदान करता था, जो केवल राष्ट्रीय हित की संकीर्ण परिभाषा से कहीं ऊपर था।

इन्हीं विविध वैचारिक धाराओं ने मिलकर नेहरू की विदेश नीति की वह नींव रखी जो स्वतंत्र, सक्रिय और शांति की पक्षधर थी।

2.2 पंचशील: गुटनिरपेक्षता का आधार

नेहरू के विदेश नीति दर्शन को सबसे ठोस और स्पष्ट अभिव्यक्ति पंचशील के सिद्धांतों में मिली। 'पंचशील' शब्द बौद्ध अभिलेखों से लिया गया है, जिसका अर्थ है 'आचरण के पाँच सिद्धांत'। इन सिद्धांतों को पहली बार औपचारिक रूप से 29 अप्रैल, 1954 को तिब्बत क्षेत्र के संबंध में भारत और चीन के बीच हुए एक समझौते की प्रस्तावना में प्रस्तुत किया गया था।

यह समझौता ऐतिहासिक रूप से महत्वपूर्ण था क्योंकि इसने दो बड़े एशियाई देशों के बीच संबंधों के लिए एक नया ढाँचा प्रस्तुत किया, जो सैन्य गठजोड़ या शक्ति संतुलन के बजाय नैतिक सिद्धांतों पर आधारित था।

पंचशील के पाँच सिद्धांत इस प्रकार हैं:

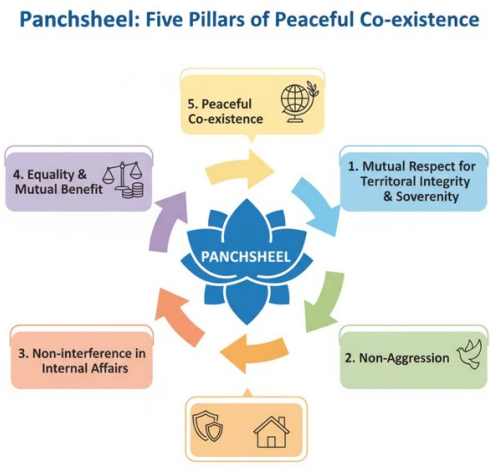

1. एक दूसरे की प्रादेशिक अखंडता और संप्रभुता का सम्मान (Respect for each other's territorial integrity and sovereignty)।
2. अनाक्रमण (Non-aggression)।
3. एक दूसरे के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप न करना (Non-interference in each other's internal affairs)।
4. समानता और पारस्परिक लाभ (Equality and mutual benefit)।
5. शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व (Peaceful co-existence)।

ये सिद्धांत शीत युद्ध की टकराव की राजनीति का एक सीधा और शक्तिशाली विकल्प थे। जहाँ एक ओर नाटो और वारसा पैक्ट सैन्य टकराव की बात कर रहे थे, वहीं पंचशील शांतिपूर्ण संवाद और सहयोग का मार्ग सुझा रहा था। नेहरू के लिए, 'शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व' केवल एक नारा नहीं था, बल्कि एक आवश्यकता थी, विशेषकर परमाणु युग में जहाँ युद्ध का अर्थ मानव जाति का विनाश हो सकता था (नूरानी, 2011, पृ. 58)।

इन सिद्धांतों को जल्द ही अंतरराष्ट्रीय मान्यता मिली। 1955 में हुए ऐतिहासिक बांडुंग सम्मेलन में इन्हें विस्तार दिया गया और यह गुटनिरपेक्ष आंदोलन का वैचारिक आधार बन गए। पंचशील ने नव-स्वतंत्र राष्ट्रों को एक ऐसा नैतिक और राजनीतिक ढाँचा प्रदान किया जिसके आधार पर वे महाशक्तियों के दबाव का विरोध कर सकते थे और एक स्वतंत्र विदेश नीति का अनुसरण कर सकते थे।

यही दार्शनिक और सैद्धांतिक आधारशिला थी जिस पर नेहरू ने गुटनिरपेक्ष आंदोलन की व्यावहारिक इमारत खड़ी की, जिसका विश्लेषण अगले अध्याय में किया जाएगा।

गुटनिरपेक्ष आंदोलन की स्थापना और नेहरू की भूमिका

जवाहरलाल नेहरू का विदेश नीति दर्शन, जो पंचशील के सिद्धांतों में निहित था, केवल एक अकादमिक विचार नहीं था। उन्होंने इसे एक व्यावहारिक, वैश्विक आंदोलन में बदलने के लिए सक्रिय रूप से राजनयिक प्रयास किए। यह अध्याय उन ऐतिहासिक मील के पत्थर—विशेष रूप से बांडुंग और बेलग्रेड सम्मेलनों—की जांच करता है जहाँ गुटनिरपेक्ष आंदोलन ने आकार लिया और इस प्रक्रिया में नेहरू की केंद्रीय भूमिका का विश्लेषण करता है।

आंदोलन की नींव: बांडुंग सम्मेलन (1955)

यदि पंचशील गुटनिरपेक्षता की आत्मा थी, तो इसकी पहली सार्वजनिक अभिव्यक्ति अप्रैल 1955 में इंडोनेशिया के बांडुंग शहर में हुए एशियाई-अफ्रीकी सम्मेलन में हुई। यह सम्मेलन अपने आप में एक अभूतपूर्व घटना थी। इतिहास में यह पहली बार था जब 29 एशियाई और अफ्रीकी देशों के प्रतिनिधि—जिनमें से कई हाल ही में औपनिवेशिक शासन से मुक्त हुए थे—एक साथ एक मंच पर आए। इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य "एशियाई-अफ्रीकी राष्ट्रों के बीच आपसी समझ और सहयोग को बढ़ावा देना और उपनिवेशवाद तथा नस्लवाद के खिलाफ एकजुट होना था" (Willetts, 1978, p. 5)।

इस सम्मेलन के आयोजन में नेहरू की भूमिका महत्वपूर्ण थी। उन्होंने इंडोनेशिया के राष्ट्रपति सुकर्णो के साथ मिलकर इस विचार को साकार रूप दिया। बांडुंग में, नेहरू एक वरिष्ठ राजनेता के रूप में उभरे, जिनकी आवाज को सम्मान के साथ सुना जाता था। उन्होंने अपने भाषण में शीत युद्ध के सैन्य गठबंधनों, विशेष रूप से 'सीटो' (SEATO - Southeast Asia Treaty Organization) की कड़ी आलोचना की और इसे नव-उपनिवेशवाद का एक रूप बताया। उन्होंने तर्क दिया कि एशिया और अफ्रीका के देशों को अपनी नियति अपने हाथों में लेनी चाहिए और महाशक्तियों की शक्ति-राजनीति का मोहरा बनने से इनकार कर देना चाहिए।

यहीं पर नेहरू की मुलाकात दो अन्य प्रभावशाली नेताओं मिस्र के गमाल अब्देल नासिर (Gamal Abdel Nasser) और यूगोस्लाविया के जोसिप ब्रोज़ टीटो (Josip Broz Tito) से हुई। हालाँकि टीटो एक यूरोपीय नेता होने के कारण बांडुंग में आधिकारिक तौर पर आमंत्रित नहीं थे, लेकिन वे एक पर्यवेक्षक के रूप में उपस्थित थे। इन तीनों नेताओं ने पाया कि उनके विश्व-दृष्टिकोण में अद्भुत समानता थी। वे तीनों ही अपने-अपने देशों की स्वतंत्रता और स्वायत्तता को लेकर प्रतिबद्ध थे और दोनों शक्ति गुटों से समान दूरी बनाए रखना चाहते थे। इसी सम्मेलन के दौरान नेहरू-नासिर-टीटो की तिकड़ी की नींव पड़ी, जिसने आगे चलकर गुटनिरपेक्ष आंदोलन को नेतृत्व प्रदान किया (Appadorai, 1981, p. 72)।

बांडुंग सम्मेलन ने दस सिद्धांतों का एक घोषणापत्र जारी किया, जो पंचशील के सिद्धांतों का ही विस्तार था। इसने गुटनिरपेक्षता के लिए एक ठोस वैचारिक आधार तैयार किया और यह साबित कर दिया कि एशिया और अफ्रीका के देश वैश्विक मामलों में एक महत्वपूर्ण और एकजुट आवाज बन सकते हैं।

गुटनिरपेक्ष आंदोलन का उदय (1955-1961)

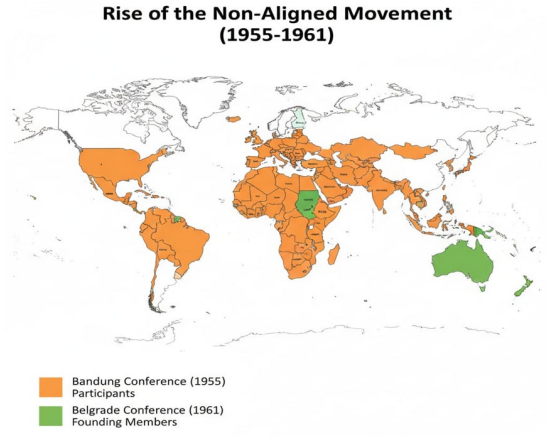

औपचारिक स्थापना: बेलग्रेड शिखर सम्मेलन (1961)

बांडुंग सम्मेलन ने जहाँ आंदोलन की नींव रखी, वहीं गुटनिरपेक्ष आंदोलन (Non-Aligned Movement - NAM) की औपचारिक स्थापना सितंबर 1961 में यूगोस्लाविया की राजधानी बेलग्रेड में हुए

पहले शिखर सम्मेलन में हुई। 1955 और 1961 के बीच वैश्विक तनाव और बढ़ गया था—क्यूबा मिसाइल संकट की आहट, बर्लिन की दीवार का निर्माण और कांगो संकट ने दुनिया को परमाणु युद्ध के कगार पर ला खड़ा किया था। इस तनावपूर्ण माहौल ने एक संगठित गुटनिरपेक्ष आंदोलन की आवश्यकता को और भी जरूरी बना दिया। बेलग्रेड शिखर सम्मेलन में 25 सदस्य देशों ने भाग लिया। यहाँ नेहरू की भूमिका एक मार्गदर्शक की थी। सम्मेलन में कुछ नेताओं, जैसे कि सुकर्णो, का जोर उपनिवेशवाद जैसे स्थानीय मुद्दों पर अधिक था, लेकिन नेहरू ने एक व्यापक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। उन्होंने तर्क दिया कि उस समय दुनिया के सामने सबसे बड़ा मुद्दा "युद्ध और शांति का मुद्दा" था। उन्होंने कहा, "जब दुनिया परमाणु विनाश के खतरे का सामना कर रही हो, तो बाकी सब कुछ गौण हो जाता है" (Gopal, 1984, p. 195)।

उनके आग्रह पर ही सम्मेलन के अंतिम घोषणापत्र में निशस्त्रीकरण, उपनिवेशवाद की समाप्ति और विश्व शांति को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई। नेहरू ने आंदोलन को किसी भी गुट के खिलाफ एक 'तीसरे गुट' के रूप में स्थापित करने का विरोध किया। उनके अनुसार, गुटनिरपेक्षता का अर्थ "एक सकारात्मक और रचनात्मक नीति" था, न कि नकारात्मक अलगाववाद। उन्होंने इसे "शांति का क्षेत्र" बढ़ाने का एक माध्यम बताया।

इस प्रकार, नेहरू ने न केवल आंदोलन की वैचारिक नींव रखी, बल्कि बेलग्रेड में इसके लक्ष्यों को परिभाषित करने, इसके सिद्धांतों को स्थापित करने और इसे एक नकारात्मक या प्रतिक्रियावादी समूह बनने से बचाने में भी निर्णायक भूमिका निभाई। उन्होंने गुटनिरपेक्ष आंदोलन को एक नैतिक शक्ति के रूप में स्थापित किया, जो शीत युद्ध के सैन्य और वैचारिक टकराव के बीच शांति, स्वतंत्रता और न्याय की आवाज बन सकता था।

आलोचनात्मक मूल्यांकन: सफलताएँ और सकारात्मक प्रभाव

गुटनिरपेक्षता की नीति, जिसकी आलोचना अक्सर इसके आदर्शवाद के लिए की जाती है, वास्तव में जवाहरलाल नेहरू के तर्कसंगत राष्ट्रीय हित (Enlightened Self-Interest) की गहरी समझ पर आधारित थी। यह अध्याय उन महत्वपूर्ण सफलताओं और सकारात्मक प्रभावों का मूल्यांकन करता है जो इस नीति ने न केवल भारत के लिए, बल्कि संपूर्ण विश्व के लिए अर्जित किए।

1. भारत के लिए लाभ

नेहरू की गुटनिरपेक्षता ने भारत को ठोस और दूरगामी लाभ पहुँचाए, जिसने नव-स्वतंत्र राष्ट्र की नींव को मजबूत किया।

- **राष्ट्रीय संप्रभुता का संरक्षण (Preservation of National Sovereignty):** यह गुटनिरपेक्षता का सबसे महत्वपूर्ण लाभ था। शीत युद्ध के दौर में जहाँ गुटों में शामिल देशों को अक्सर अपने विदेशी और यहाँ तक कि घरेलू मामलों में भी महाशक्तियों के निर्देशों का पालन करना पड़ता था, भारत अपनी निर्णय लेने की स्वतंत्रता को बनाए रखने में कामयाब रहा। भारत किसी भी सैन्य गठबंधन से नहीं बँधा था, इसलिए वह अंतरराष्ट्रीय मुद्दों पर अपने विवेक और राष्ट्रीय हितों के अनुसार निर्णय ले सकता था। जैसा कि पूर्व राजनयिक के.पी.एस. मेनन ने लिखा, "गुटनिरपेक्षता ने हमें अपनी पहचान बनाए रखने और किसी और की प्रतिध्वनि बनने से बचाया" (मेनन, 1963, पृ. 88)।
- **अंतर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा में वृद्धि (Enhancement of International Prestige):** गुटनिरपेक्ष आंदोलन के नेता के रूप में, भारत का कद अंतरराष्ट्रीय मंच पर उसकी सैन्य या आर्थिक शक्ति से कहीं अधिक बढ़ गया। नेहरू एक वैश्विक राजनेता के रूप में देखे जाने लगे, जिनकी सलाह को वाशिंगटन और मॉस्को दोनों में महत्व दिया जाता था। भारत ने कोरियाई युद्ध (1950-53) और स्वेज संकट (1956) जैसे कई अंतरराष्ट्रीय विवादों में एक महत्वपूर्ण मध्यस्थ की भूमिका निभाई, जिससे विश्व शांति में योगदान देने वाले देश के रूप में इसकी प्रतिष्ठा स्थापित हुई।
- **दोनों गुटों से आर्थिक और तकनीकी सहायता (Economic and Technical Aid from Both Blocs):** नेहरू ने गुटनिरपेक्षता का कुशलतापूर्वक उपयोग भारत के आर्थिक विकास के लिए किया। चूँकि भारत किसी एक गुट के प्रति प्रतिबद्ध नहीं था, इसलिए वह अपनी विकासात्मक परियोजनाओं के लिए दोनों गुटों से सहायता प्राप्त कर सकता था। इसका सबसे उत्कृष्ट उदाहरण भारत के इस्पात संयंत्र हैं: भिलाई इस्पात संयंत्र सोवियत संघ के सहयोग से बनाया गया, जबकि दुर्गापुर इस्पात संयंत्र ब्रिटेन और राउरकेला इस्पात संयंत्र पश्चिमी जर्मनी की मदद से स्थापित हुआ। इस नीति ने भारत को बिना किसी एक महाशक्ति पर निर्भर हुए अपने औद्योगिक आधार का निर्माण करने में सक्षम बनाया (मोहन, 2003, पृ. 56)।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-61) के दौरान प्रमुख परियोजनाओं में विदेशी सहयोग

यह तालिका दर्शाती है कि कैसे जवाहरलाल नेहरू की गुटनिरपेक्ष नीति ने भारत को शीत युद्ध के दोनों गुटों से महत्वपूर्ण तकनीकी और वित्तीय सहायता प्राप्त करने में सक्षम बनाया, जिससे देश के औद्योगिक और शैक्षिक बुनियादी ढांचे को मजबूती मिली।

परियोजना का नाम (Project Name)	प्रकार (Type)	सहयोगी देश (Collaborating Country)	गुट (Bloc)
भिलाई इस्पात संयंत्र	भारी उद्योग	सोवियत संघ (USSR)	पूर्वी गुट (Eastern Bloc)
दुर्गापुर इस्पात संयंत्र	भारी उद्योग	यूनाइटेड किंगडम (UK)	पश्चिमी गुट (Western Bloc)
राउरकेला इस्पात संयंत्र	भारी उद्योग	पश्चिमी जर्मनी (West Germany)	पश्चिमी गुट (Western Bloc)
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (IIT), बॉम्बे	उच्च शिक्षा	सोवियत संघ (UNESCO के माध्यम से)	पूर्वी गुट (Eastern Bloc)
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (IIT), कानपुर	उच्च शिक्षा	संयुक्त राज्य अमेरिका (USA)	पश्चिमी गुट (Western Bloc)
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान (IIT), मद्रास	उच्च शिक्षा	पश्चिमी जर्मनी (West Germany)	पश्चिमी गुट (Western Bloc)
भारी इंजीनियरिंग निगम, रांची	भारी उद्योग	सोवियत संघ और चेकोस्लोवाकिया	पूर्वी गुट (Eastern Bloc)
अप्सरा परमाणु रिएक्टर	परमाणु ऊर्जा	यूनाइटेड किंगडम (UK)	पश्चिमी गुट (Western Bloc)

2. वैश्विक प्रभाव

गुटनिरपेक्षता का प्रभाव भारत की सीमाओं से कहीं आगे तक फैला। इसने अंतरराष्ट्रीय संबंधों की प्रकृति को बदलने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

- **शांति को बढ़ावा और युद्ध का विरोध (Promotion of Peace and Opposition to War):** गुटनिरपेक्ष आंदोलन ने संयुक्त राष्ट्र में एक महत्वपूर्ण "शांति लॉबी" के रूप में काम किया। इसने लगातार परमाणु निशस्त्रीकरण की वकालत की और महाशक्तियों के बीच बढ़ते तनाव को कम करने का

आह्वान किया। हालाँकि यह आंदोलन सैन्य रूप से शक्तिशाली नहीं था, लेकिन इसकी नैतिक शक्ति और इसके सदस्यों की विशाल संख्या ने एक ऐसा दबाव बनाया जिसे पूरी तरह से अनदेखा नहीं किया जा सकता था। इसने शीत युद्ध को एक "गर्म युद्ध" में बदलने से रोकने में निश्चित रूप से एक सहायक भूमिका निभाई।

- **उपनिवेशवाद की समाप्ति को गति देना (Accelerating Decolonization):** गुटनिरपेक्ष आंदोलन ने उपनिवेशवाद और नस्लवाद के खिलाफ एक शक्तिशाली और एकजुट मंच प्रदान किया। इसने संयुक्त राष्ट्र और अन्य अंतरराष्ट्रीय मंचों पर लगातार उन देशों की स्वतंत्रता के लिए आवाज उठाई जो अभी भी औपनिवेशिक शासन के अधीन थे। इस सामूहिक राजनयिक दबाव ने औपनिवेशिक शक्तियों पर अपनी पकड़ छोड़ने और स्वतंत्रता प्रक्रिया में तेजी लाने के लिए दबाव डाला (Jansen, 1966, p. 287)।
- **विकासशील देशों को एक मंच प्रदान करना (Providing a Platform for the Developing World):** शायद गुटनिरपेक्ष आंदोलन की सबसे स्थायी विरासत यह है कि इसने एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के नए स्वतंत्र और विकासशील देशों को एक सामूहिक पहचान और आवाज दी। इसने "तीसरी दुनिया" (Third World) की अवधारणा को जन्म दिया—एक ऐसा समूह जो अपनी सामान्य समस्याओं (जैसे गरीबी, अविकसितता) और सामान्य लक्ष्यों (जैसे एक न्यायसंगत वैश्विक आर्थिक व्यवस्था) के लिए मिलकर काम कर सकता था। इसी भावना ने बाद में जी-77 (G-77) जैसे समूहों के गठन को प्रेरित किया।

संक्षेप में, नेहरू की गुटनिरपेक्षता की नीति ने न केवल भारत के राष्ट्रीय हितों को सुरक्षित किया, बल्कि एक अधिक संतुलित, न्यायसंगत और शांतिपूर्ण विश्व व्यवस्था के निर्माण में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया।

इन सफलताओं के बावजूद, यह नीति आलोचनाओं और चुनौतियों से परे नहीं थी, जिसका विश्लेषण अगले अध्याय में किया जाएगा।

आलोचनात्मक मूल्यांकन: विफलताएँ और चुनौतियाँ

जहाँ एक ओर नेहरू की गुटनिरपेक्षता की नीति ने भारत और विश्व को कई लाभ पहुँचाए, वहीं यह गंभीर आलोचनाओं, चुनौतियों और विफलताओं से अछूती नहीं रही। यह अध्याय उन कमजोरियों का विश्लेषण करता है जिन्होंने इस नीति की प्रभावशीलता और प्रासंगिकता पर गंभीर प्रश्न खड़े किए।

1. आदर्शवाद बनाम यथार्थवाद (Idealism vs. Realism)

नेहरू की विदेश नीति पर सबसे आम और स्थायी आरोपों में से एक यह है कि यह अत्यधिक आदर्शवाद (Idealism) पर आधारित थी और अंतरराष्ट्रीय संबंधों की क्रूर यथार्थवादी (Realist) सच्चाइयों की अनदेखी करती थी। आलोचकों का तर्क है कि नेहरू यह मानने की भूल कर बैठे कि नैतिक सिद्धांतों और शांति की अपीलों से शक्ति-संतुलन और राष्ट्रीय हित की राजनीति को बदला जा सकता है।

- **पंचशील में अत्यधिक विश्वास:** नेहरू ने पंचशील के सिद्धांतों में गहरा विश्वास रखा, यह मानते हुए कि ये सिद्धांत राष्ट्रों के बीच संबंधों को नियंत्रित करने के लिए पर्याप्त होंगे। हालाँकि, यथार्थवादी विचारकों के अनुसार, अंतरराष्ट्रीय राजनीति में कोई स्थायी मित्र या शत्रु नहीं होता, केवल स्थायी हित होते हैं। नेहरू का यह विश्वास कि चीन जैसे देश इन नैतिक सिद्धांतों का पालन करेंगे, अंततः एक घातक भूल साबित हुआ (सिब्बल, 2016, पृ. 45)।
- **सैन्य तैयारी की अनदेखी:** शांति और निशस्त्रीकरण पर नेहरू के जोर के कारण, भारत की सैन्य तैयारियों और आधुनिकीकरण पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया। उनका मानना था कि भारत की नैतिक प्रतिष्ठा और शांतिपूर्ण इरादे ही उसकी सबसे बड़ी सुरक्षा हैं। इस आदर्शवादी सोच ने भारत को बाहरी आक्रमणों, विशेषकर चीन के संदर्भ में, के प्रति असुरक्षित बना दिया।
- **गोवा का मुद्दा:** 1961 में गोवा को पुर्तगाली शासन से मुक्त कराने के लिए की गई सैन्य कार्रवाई (ऑपरेशन विजय) ने नेहरू के आदर्शवाद और यथार्थवाद के बीच के द्वंद्व को उजागर कर दिया। वर्षों तक वे इस समस्या के शांतिपूर्ण समाधान की वकालत करते रहे, लेकिन जब कूटनीति विफल हो गई, तो उन्हें अंततः सैन्य बल का प्रयोग करना पड़ा। इस कदम की कई पश्चिमी देशों ने आलोचना की और इसे नेहरू की अहिंसक छवि के विपरीत माना। यह घटना इस बात का प्रमाण थी कि अंतरराष्ट्रीय राजनीति में कभी-कभी आदर्शवादी सिद्धांतों को व्यावहारिक राष्ट्रीय हितों के लिए पीछे रखना पड़ता है।

2. चीन-भारत युद्ध (1962): एक बड़ी विफलता

यदि नेहरू की विदेश नीति की किसी एक घटना को उसकी सबसे बड़ी विफलता के रूप में देखा जाता है, तो वह निस्संदेह 1962 का चीन-भारत सीमा युद्ध है। यह युद्ध न केवल भारत के लिए एक अपमानजनक सैन्य हार थी, बल्कि यह नेहरू के पूरे विश्व-दृष्टिकोण और गुटनिरपेक्षता के दर्शन पर एक सीधा प्रहार था।

- पंचशील का पतन: यह युद्ध 'हिंदी-चीनी भाई-भाई' के नारे और पंचशील समझौते का एक क्रूर अंत था। चीन, जिसने 1954 में पंचशील पर हस्ताक्षर किए थे, ने उसके लगभग हर सिद्धांत—संप्रभुता का सम्मान, अनाक्रमण, शांतिपूर्ण सह-अस्तित्व—का उल्लंघन किया। इसने यह कड़वी सच्चाई उजागर की कि नैतिक समझौते तब तक अर्थहीन होते हैं जब तक कि उन्हें लागू करने की सैन्य शक्ति या राजनीतिक इच्छाशक्ति न हो (मैक्सवेल, 1970, पृ. 320)।
- गुटनिरपेक्ष आंदोलन की निष्क्रियता: भारत के लिए शायद सबसे बड़ा आघात गुटनिरपेक्ष आंदोलन के सदस्य देशों की प्रतिक्रिया थी। संकट के समय, भारत के गुटनिरपेक्ष मित्र या तो चुप रहे या उन्होंने दोनों पक्षों से "शांति बनाए रखने" की अपील की। किसी भी प्रमुख गुटनिरपेक्ष देश ने चीन को स्पष्ट रूप से आक्रामक घोषित नहीं किया और न ही भारत को कोई ठोस सहायता प्रदान की। इस निष्क्रियता ने आंदोलन की सबसे बड़ी कमजोरी को उजागर कर दिया: यह उपनिवेशवाद के खिलाफ एक राजनीतिक मंच के रूप में तो प्रभावी था, लेकिन अपने ही एक सदस्य पर हुए हमले के खिलाफ एक सामूहिक सुरक्षा प्रणाली के रूप में पूरी तरह से विफल था।
- नेहरू पर व्यक्तिगत प्रभाव: इस युद्ध ने नेहरू को व्यक्तिगत रूप से तोड़ दिया। यह उनके विश्वास और उनकी नीति पर एक कुठाराघात था। प्रसिद्ध रूप से, उन्होंने संसद में कहा, "हम एक ऐसी दुनिया में रह रहे थे जिसे हमने खुद बनाया था, और यह वास्तविकता से मेल नहीं खाता था।" यह हार उनके राजनीतिक जीवन का सबसे अंधकारमय अध्याय थी और माना जाता है कि इसने उनके स्वास्थ्य पर भी गहरा नकारात्मक प्रभाव डाला, जिसके दो साल से भी कम समय बाद उनका निधन हो गया (गोपाल, 1984, पृ. 225)।

इस युद्ध ने न केवल नेहरू की नीति की सीमाओं को उजागर किया, बल्कि गुटनिरपेक्षता की प्रभावशीलता पर भी गंभीर प्रश्न खड़े कर दिए, जिससे भारत को अपनी विदेश और रक्षा नीतियों पर गहराई से पुनर्विचार करने के लिए मजबूर होना पड़ा।

3. सोवियत-समर्थक" होने का आरोप (Accusation of being "Pro-Soviet")

गुटनिरपेक्षता के सिद्धांत का दावा तटस्थता और दोनों महाशक्तियों

से समान दूरी बनाए रखने का था, लेकिन व्यवहार में, विशेष रूप से पश्चिमी देशों ने, नेहरू की भारत पर अक्सर सोवियत-समर्थक (Pro-Soviet) होने का आरोप लगाया। आलोचकों का तर्क था कि भारत की गुटनिरपेक्षता एक दिखावा थी और इसके पीछे सोवियत संघ के प्रति एक नरम भाग (soft corner) था।

- **दोहरे मापदंड का आरोप:** इसका सबसे ज्वलंत उदाहरण 1956 में लगभग एक साथ घटी दो अंतरराष्ट्रीय घटनाओं पर भारत की प्रतिक्रिया में देखने को मिलता है।
  1. **स्वेज संकट (Suez Crisis):** जब ब्रिटेन, फ्रांस और इज़राइल ने मिस्र पर आक्रमण किया, तो भारत ने इसकी कड़ी और तत्काल निंदा की। नेहरू ने इसे "नग्न आक्रामकता" और साम्राज्यवाद की वापसी बताया।
  2. **हंगरी का संकट (Hungarian Crisis):** लगभग उसी समय, जब सोवियत संघ ने हंगरी के विद्रोह को कुचलने के लिए अपने टैंक भेज दिए, तो भारत की प्रतिक्रिया बहुत दबी हुई और विलंबित थी। भारत ने संयुक्त राष्ट्र में सोवियत आक्रमण की निंदा करने वाले प्रस्ताव पर मतदान में भाग नहीं लिया।

इस स्पष्ट दोहरे मापदंड ने भारत की गुटनिरपेक्ष साख को गंभीर रूप से नुकसान पहुँचाया। पश्चिमी देशों ने इसे इस बात के प्रमाण के रूप में देखा कि भारत की नैतिकता sélective (चुनिंदा) थी और वह सोवियत आक्रामकता की आलोचना करने से डरता था (कुक्स, 2001, पृ. 145)। हालाँकि भारत ने इसके पीछे तर्क दिया कि वह पर्दे के पीछे से सोवियत संघ पर दबाव बनाने की कोशिश कर रहा था, लेकिन यह तर्क अंतरराष्ट्रीय समुदाय को संतुष्ट करने में विफल रहा।

- **कश्मीर पर सोवियत वीटो:** भारत के सोवियत संघ की ओर झुकाव का एक व्यावहारिक कारण संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में कश्मीर के मुद्दे पर सोवियत संघ का वीटो (Veto) था। सोवियत संघ ने कई मौकों पर अपने वीटो का इस्तेमाल करके भारत के खिलाफ पश्चिमी-प्रायोजित प्रस्तावों को रोका। इस रणनीतिक समर्थन ने भारत को सोवियत संघ की आलोचना करने में संयम बरतने के लिए मजबूर किया।

4. आर्थिक विकास पर सीमित प्रभाव (Limited Impact on Economic Development)

एक और सूक्ष्म लेकिन महत्वपूर्ण आलोचना यह है कि नेहरू ने अंतरराष्ट्रीय मामलों और गुटनिरपेक्ष आंदोलन को खड़ा करने में इतनी अधिक ऊर्जा और राजनयिक संसाधन लगा दिए कि देश के आंतरिक आर्थिक विकास (Economic Development) के महत्वपूर्ण मुद्दे पर शायद उतना ध्यान नहीं दिया जा सका, जितना आवश्यक था।

- **प्राथमिकताओं का प्रश्न:** नेहरू प्रधानमंत्री होने के साथ-साथ विदेश मंत्री भी थे। उनका अधिकांश समय और बौद्धिक ऊर्जा वैश्विक मंच पर भारत की भूमिका को आकार देने में व्यतीत होती थी। आलोचकों का तर्क है कि यदि यही ऊर्जा और ध्यान भारत की गंभीर गरीबी, बेरोजगारी और अविकसितता की समस्याओं को सुलझाने में लगाया जाता, तो परिणाम बेहतर हो सकते थे (कोहली, 2003, पृ. 68)।
- **राजनीतिक एकजुटता पर अत्यधिक जोर:** नेहरू के काल में गुटनिरपेक्ष आंदोलन का मुख्य जोर राजनीतिक और वैचारिक एकजुटता पर था। यद्यपि इसने उपनिवेशवाद के खिलाफ एक मजबूत मंच प्रदान किया, लेकिन यह सदस्य देशों के बीच ठोस आर्थिक सहयोग को बढ़ावा देने में विफल रहा। एक शक्तिशाली "दक्षिण-दक्षिण" (South-South) आर्थिक ब्लॉक बनाने का विचार बहुत बाद में उभरा। उस समय, आंदोलन अपने सदस्यों के बीच व्यापार या तकनीकी आदान-प्रदान के लिए एक प्रभावी तंत्र बनाने में असफल रहा।
- **सहायता पर निर्भरता:** यद्यपि गुटनिरपेक्षता ने भारत को दोनों गुटों से सहायता प्राप्त करने में मदद की, लेकिन कुछ अर्थशास्त्रियों का तर्क है कि इसने एक "सहायता-निर्भर" (aid-dependent) मानसिकता को भी बढ़ावा दिया। आत्मनिर्भरता और मजबूत व्यापार संबंधों के माध्यम से आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करने के बजाय, ध्यान विदेशी सहायता के संतुलन पर केंद्रित हो गया।

इस प्रकार, नेहरू की नीति की विफलताएँ और चुनौतियाँ उतनी ही महत्वपूर्ण थीं जितनी कि उसकी सफलताएँ। 1962 के युद्ध की विफलता, नीति का आदर्शवाद, सोवियत संघ की ओर झुकाव और आंतरिक विकास पर ध्यान केंद्रित करने में संभावित कमी, ये सभी पहलू नेहरू की विरासत के एक संतुलित और आलोचनात्मक मूल्यांकन के लिए आवश्यक हैं।

निष्कर्ष:

जवाहरलाल नेहरू का गुटनिरपेक्ष आंदोलन के प्रणेता के रूप में मूल्यांकन करना, वास्तव में एक व्यक्ति की विरासत और एक वैश्विक आंदोलन के उतार-चढ़ाव का मूल्यांकन करना है। यह शोध पत्र नेहरू की भूमिका का आलोचनात्मक विश्लेषण करने के उद्देश्य से शुरू हुआ, जिसमें उनकी सफलताओं और विफलताओं दोनों को निष्पक्ष रूप से प्रस्तुत किया गया। अब हम इस विश्लेषण के आधार पर अंतिम निष्कर्षों पर पहुँच सकते हैं।

शोध के प्रमुख निष्कर्षों का सारांश

- इस शोध से यह स्पष्ट होता है कि जवाहरलाल नेहरू केवल गुटनिरपेक्ष आंदोलन के एक संस्थापक सदस्य नहीं थे, बल्कि वे इसके मुख्य दार्शनिक, रणनीतिकार और वास्तुकार थे। उन्होंने द्वितीय विश्व युद्ध के बाद की द्विध्रुवीय दुनिया में नव-स्वतंत्र राष्ट्रों के लिए एक साहसिक और मौलिक 'तीसरा रास्ता' प्रस्तावित किया।
- **सफलताएँ:** नेहरू की नीति ने भारत को अपनी रणनीतिक स्वायत्तता (Strategic Autonomy) बनाए रखने में मदद की, उसे दोनों महाशक्तियों से आर्थिक सहायता प्राप्त करने में सक्षम बनाया और अंतरराष्ट्रीय मंच पर भारत की प्रतिष्ठा को उसकी वास्तविक शक्ति से कहीं अधिक बढ़ा दिया। वैश्विक स्तर पर, इस आंदोलन ने उपनिवेशवाद के अंत में तेजी लाने, विश्व शांति की वकालत करने और विकासशील देशों को एक सामूहिक आवाज प्रदान करने में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।
- **विफलताएँ:** इसके साथ ही, नेहरू की नीति गंभीर चुनौतियों और विफलताओं से घिरी रही। उनका आदर्शवाद अक्सर यथार्थवाद पर हावी रहा, जिसका सबसे विनाशकारी परिणाम 1962 के चीन-भारत युद्ध में भारत की अपमानजनक हार के रूप में सामने आया। इस एक घटना ने पंचशील के सिद्धांतों की सीमाओं और गुटनिरपेक्ष आंदोलन की सामूहिक सुरक्षा प्रदान करने में अयोग्यता को उजागर कर दिया। इसके अतिरिक्त, सोवियत संघ की ओर झुकाव के आरोपों ने आंदोलन की निष्पक्षता पर सवाल खड़े किए।

नेहरू की विरासत का संतुलित मूल्यांकन

तो, नेहरू की विरासत (Legacy) का अंतिम मूल्यांकन क्या है?

नेहरू एक दूरदर्शी नेता थे, जिन्होंने एक ऐसी दुनिया की कल्पना की जो सैन्य गठबंधनों और शक्ति-राजनीति के संकीर्ण दायरे से परे हो। उन्होंने एशिया और अफ्रीका के करोड़ों लोगों की आकांक्षाओं को एक आवाज दी और एक अधिक न्यायसंगत विश्व व्यवस्था की नींव रखने का प्रयास किया। इस अर्थ में, वे निस्संदेह एक महान अंतरराष्ट्रीयतावादी और शांति के दूत थे।

लेकिन साथ ही, वे एक राजनेता भी थे, जिनके आदर्शों की कठोर वास्तविकताओं से टक्कर हुई। 1962 का युद्ध उनकी विदेश नीति के आदर्शवाद की त्रासदीपूर्ण सीमा को दर्शाता है। उनकी सबसे बड़ी ताकत—नैतिकता और शांति में उनका अटूट विश्वास—ही उनकी सबसे बड़ी कमजोरी भी साबित हुई।

अतः, नेहरू की विरासत जटिल है। उन्हें केवल उनकी सफलताओं के लिए पूजना या केवल उनकी विफलताओं के लिए उनकी निंदा करना, दोनों ही ऐतिहासिक अन्याय होगा। एक संतुलित दृष्टिकोण यह है कि नेहरू ने उस समय के लिए एक आवश्यक और साहसिक नीति अपनाई, जिसने भारत के हितों की रक्षा की और विश्व को एक बेहतर स्थान बनाने का प्रयास किया, भले ही यह प्रयास हमेशा सफल न रहा हो।

आंदोलन की समकालीन प्रासंगिकता

शीत युद्ध की समाप्ति के साथ, यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या गुटनिरपेक्ष आंदोलन आज भी प्रासंगिक है? इसका उत्तर 'हाँ' है, लेकिन एक नए संदर्भ में।

आज दुनिया दो गुटों में नहीं बंटी है, लेकिन शक्ति के कई केंद्र उभर रहे हैं। विकासशील देश (Global South) आज भी जलवायु परिवर्तन, वैश्विक व्यापार की असमान शर्तों, आतंकवाद और संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद में सुधार जैसी आम चुनौतियों का सामना कर रहे हैं। इन मुद्दों पर एक सामूहिक आवाज उठाने के लिए गुटनिरपेक्ष आंदोलन आज भी एक महत्वपूर्ण मंच हो सकता है।

आंदोलन का नाम भले ही शीत युद्ध के युग का हो, लेकिन इसके मूल सिद्धांत स्वतंत्र विदेश नीति, रणनीतिक स्वायत्तता, और दक्षिण-दक्षिण सहयोग आज पहले से कहीं अधिक प्रासंगिक हैं। इस प्रकार, जवाहरलाल नेहरू की सबसे स्थायी विरासत यह है कि उन्होंने एक ऐसी दृष्टि प्रदान की जो समय और संदर्भ की सीमाओं को पार कर, आज भी एक अधिक न्यायसंगत और संतुलित विश्व के लिए राष्ट्रों को प्रेरित करती है।

References

1. Appadorai A. The Domestic Roots of India's Foreign Policy, 1947-1972. Oxford University Press, 1981, 72.
2. Bandyopadhyaya J. The Making of India's Foreign Policy. Allied Publishers, 1970, 45.
3. Dutt VP. (दत्त, वी.पी.). India's Foreign Policy Since Independence. National Book Trust, 2007, 35.
4. Gaddis John Lewis. The Long Peace: Inquiries into the History of the Cold War. Oxford University Press, 1987, 215.
5. Gopal Sarvepalli. (गोपाल, सर्वपल्ली). Jawaharlal Nehru: A Biography, (1947-1956). Harvard University Press. 1979; 264.
6. Gopal Sarvepalli. (गोपाल, सर्वपल्ली). Jawaharlal Nehru: A Biography, Abridged Edition. Oxford University Press. 1984; 102:195-225.
7. Jansen GH. Afro-Asia and Non-Alignment. Faber and Faber, 1966, 287.
8. Kohli Atul. (कोहली, अतुल). The Success of India's Democracy. Cambridge University Press, 2003, 68.
9. Kux Dennis. (कुक्स, डेनिस). India and the United States: Estranged Democracies, 1941-1991. National Defense University Press, 2001, 145.
10. Maxwell Neville. (मैक्सवेल, नेविल). India's China War. Jonathan Cape, 1970, 320.
11. Menon KPS. (मेनन, के.पी.एस.). The Flying Troika. Oxford University Press, 1963, 88.
12. Mohan C. Raja. (मोहन, सी. राजा). Crossing the Rubicon: The Shaping of India's New Foreign Policy. Penguin Books, 2003, 56.
13. Nehru Jawaharlal. (नेहरू, जवाहरलाल). Glimpses of World History. Penguin Books India, 1934.
14. Noorani AG. (नूरानी, ए.जी.). India-China Boundary Problem, 1846-1947: History and Diplomacy. Oxford University Press, 2011, 58.
15. Sibbal Kanwal. (सिब्बल, कंवल). Unscrambling the Future: The New India's Foreign Policy. Wisdom Tree, 2016, 45.
16. Willetts, Peter. The Non-Aligned Movement: The Origins of a Third World Alliance. Popular Prakashan, 1978, 5.